इसलिए इसे
जोर शोर से
गरजो घुमड़ घुमड़ कर
सम्बोधित करो !
सुधा वर्षण से
शान्त शुद्ध
परमहंस बना दो इसे
विलम्ब मत करो अब ......।
ऐसे इस के
अपनी भाषा में
शुष्क नीलम
अधर बोल रहे .....।

❑❑❑

तोता क्यों रोता

मानस–संकेत

कृपा हुई गुरु की। वरद हस्त रहा इस मस्तक पर । अणु–अणु का अतिशय ...त हुआ । कण–कण का परिचय प्राप्त हुआ । पर प्राप्तव्य तो पर से परे है, ...त सन्धि की गन्ध को भी इसकी नासा ने पी डाली । उसी का परिणाम है यह। ...रम की उपेक्षा हुई । चरम की अपेक्षा हुई । और चरम की ओर चल पड़े ये चरण चारु चाल से । चरण–संचरण जीवन बना इस चर का ।

पथ पर बहुत दूर चल आया है यह । लो ! चलता–चलता निश्छल मन तरल चंचल हो आता है, और कुछ कहता है । हे साधक पुरुष ! ना तो मैं करण हूँ । न ही उपकरण ! हूँ केवल अन्तःकरण मैं, अदृष्ट से उपजा हूँ । इसीलिए आकारशून्य अदृश्य हूँ । ज्ञाता द्रष्टा नहीं अज्ञ अद्रष्टा हूँ । फिर भी अधिष्ठाता माना जाता हूँ उपचार से । आचार–रहित विचारों का अधिकरण हूँ प्रकृति का पुत्र ! लाड़ला।

किन्तु तुम हो विशुद्धतम करण । निश्चित ढलोगे तुम शाश्वत–सुख–सत्ता के अनन्त अधिकरण में । इसलिए पथ पूर्ण होने से पूर्व इस युग को कुछ तो दो । और मन मौन में डूबता है ।

मन की प्रेरणा से साधक पुरुष प्रेरित हुआ । सुदूर पीछे रहे, अमूर्त पथ के पथिकों पर करुणा आई और सूचना–फलकों के रूप में इन शब्दों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ता है यह साधक, सहज गति से । और पथिकों से विशेष निवेदन करता है कि वे इन सूचना–फलकों को साथ लेकर न चलें, वरन् इनसे सूचित भाव का अनुसरण करें, और शीघ्र सुख का वरण करें, धन्य !

गुरु–चरणारविन्द–चंचरीक

(आचार्य विद्यासागर मुनि)

आमुख

ये कविताएँ : वे कविताएँ

'ये कविताएँ' से मेरा मतलब उन रचनाओं से है, जो इस संकलन में प्रकाशित हैं और 'वे कविताएँ' से मतलब उन-उन तमाम आधुनिक कविताओं से है, जो मंच, माईक या अखबार को दृष्टि में रखकर लिखी जा रही हैं रोज-रोज सहस्रों हाथों से। 'वे कविताएँ' कहने को कविताएँ ही कहलाती हैं, पर उनके जन्म के पीछे रचनाकार के यश / ख्याति / प्रतिष्ठा और कहें कुछ अंशों में अर्थ की कामना जुड़ी हुई रहती है। 'वे कविताएँ' श्रम, बुद्धि और अध्ययन से ही बनती हैं, पर 'ये कविताएँ' कहीं भी उनसे तौली नही जा सकतीं। 'ये कविताएँ' अपने आधार में जिन तत्त्वों को लिये हुए हैं उनमें श्रम, बुद्धि और अध्ययन भर नहीं है; दार्शनिकता, वैचारिकता और अध्यात्म की ऊर्जा भी इनके आधारबिन्दु हैं। इनमें दर्शन के नाम पर सम्यक्-दर्शन या जैनदर्शन की कोई चासनी बलात् नहीं दी गई है, वरन इन्हें पढ़ते-पढ़ते विद्वान आदमी को जैनदर्शन/सम्यक्-दर्शन का दिव्य-दर्शन होने लगता है। वह बिन्दु में गहराई अथाहने लग जाता है। बिन्दु-बिन्दु है, सिन्धु-सिन्धु; पर जब आचार्यश्री के काव्य-बिन्दु से साक्षात्कार होता है, तब वह अपने आप काव्य-सिन्धु-सा विराट होता चला जाता है।

मैं उनकी कविताओं को लेकर नई बात बतला देना चाहता हूँ जिसे समीक्षक, आलोचक या भूमिकाकार अक्सर अपनी दृष्टि से ओझल कर जाते हैं।

ले लें उनकी ये पंक्तियाँ :

मन की खटिया पर
वयोवृद्धा आशा
जीवित थी।

'खटिया' शब्द यहाँ साधारण पाठक को खटक सकता है। शहर में ऊँचे-ऊँचे भवन और सिंचित उद्यान देखते रहने वाले जन, नैर्जन्य में झोपड़ी और झाड़-झंखाड़ देखकर ऐसा मुँह बिदकाते हैं, जैसे कुछ वीभत्स-सा देख लिया हो। सम्भवतः, यही दृष्टि आजकल का पढ़ा-लिखा पाठक भी लेकर चलने लगा है, किसी रचना में १०-५ कठिन या अनसुने/अनबाँचे शब्द देखने को मिल जाएँ तो रचना को विशिष्ट मान बैठता है। रोजमर्रा बोलचाल में आने वाले शब्दों से वह प्रभावित नहीं होता दिखता। जैसे क्लिष्ट शब्दों से ही साहित्य बनता हो! आचार्यश्री इस सारे संकलन में कहीं भी शब्द-यात्रा पर नहीं दिखे, वे विचार-यात्रा के पथिक बनकर चले हैं पृष्ठ-दर-पृष्ठ। जिस तरह परिव्राजक महावीर अपने मंगल-विहार के दौरान पतितों का उद्धार करते चले हैं, उसी तरह आचार्यश्री अपनी काव्य-यात्रा में शब्दों का उद्धार करते दिखते हैं। यों उन्होंने साधारण शब्द पकड़ कर शिल्प के विरूप होने का खतरा लिया है, फिर भी अपनी भावभूमिका के कारण उनकी कविता का हर शब्द सम्मान पाता गया, जो शब्द अछूत समझकर विद्वानों द्वारा डिक्शनरी में सम्मिलित नहीं किए गए; आचार्यश्री ने उनका 'नागरिक अभिनन्दन' किया है और वे (शब्द) स्थापित होते चले गए। आचार्यश्री यह नहीं सोचते कि इन / ऐसे शब्दों से उनकी कविता का क्या होगा? पढ़ते-पढ़ते लगा कि शब्दों का खतरा झेल कर ही वे लोकप्रिय बने हैं, यह घोषणा मैं कर रहा हूँ। एक बात और; शब्द घटिया नहीं होते, उनका उपयोग करने का ढंग घटिया होता है। आचार्यश्री ने दोनों प्रकार का घटियापन नहीं स्वीकारा, और पंक्ति-पंक्ति में आत्मा की गंध जीवित बनाए रखने में वे सफल रहे हैं। यों जिनने उनकी कृति 'नर्मदा का नरम कंकर' पढ़ी है वे कुछ उल्टा कहते मिले हैं-- 'बड़ी कठिन भाषा है।' परन्तु इस संकलन में आचार्यश्री हर पृष्ठ को बोधगम्य बनाए रहे हैं बराबर।

'बिना दान भी, जीवन चलाना पुण्य, की निशानी है'

लगता है आचार्यश्री को खतरा मोल लेने की आदत है। यहाँ शब्द से नहीं तो भावपक्ष से उन्होंने खतरा लेने का प्रयास किया है। जब सारा संसार, दान के बाद जीवन को जीवन मानता है, वहाँ वे 'बिना-दान' के जीवन का भी मूल्यांकन करते हैं। पढ़ें रचना 'पंकिल पद'। दार्शनिक की गंभीर आवाज सुनाई देने लगेगी।

'परम नमन में रम'

यह एक पंक्ति है; मगर एक पूरे पुराण का संदेश लेकर प्रकट हुई है। आदमी नाम का वह 'जीव' कहाँ रमें? उसे (आदमी को) यह भी नहीं मालूम। आचार्यश्री की दार्शनिक वृत्ति का इस कविता से पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है, जब पढ़ने को मिलता है -

चरम चमन में रम

नरम में न रम, न रम !

संकलन की अन्य कविताएँ भी उच्च-मनन की गौरव गरिमा से मंडित हैं। खास तौर से **'तोता क्यों रोता'** रचना; जिसके नाम से प्रस्तुत पुस्तक का संज्ञाकरण किया गया है, अपनी वैचारिक-गहनता के लिए पाठकों द्वारा बार-बार पढ़ी जायेगी । हर बार एक रहस्य उद्घाटित होगा। हर बार सोच का नया क्षितिज नेत्र-पटल से टकरायेगा । हर बार कविता से ही कुछ वार्ता करता लगेगा उसका बोधी-मन ।

कहने को इस पुस्तक के नन्हें-से कलेवर में ५५ रचनाएँ संगृहीत हैं, पर पढ़ने वाले कहेंगे - वे ५५ रेखाएँ हैं, काव्य की अनुभूति की; अध्यात्म की और एक पूर्ण कवि के चिन्तन की ।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व और कृतित्व विशेषणों से परे है, यदि कहा जाय कि वे युग के महाकवि हैं या श्रेष्ठकवि हैं, तो विशेषण बौना लगता है । युग के हाथों और मस्तिष्क में इतनी शक्ति नहीं कि कोई नया विशेषण गढ़ दे। (कोई गढ़ भी दे तो आचार्यश्री कब स्वीकारने वाले हैं ?) जो दिगम्बरत्व धारण कर चुके हैं, वे अब और कुछ धारण करने की रौ में नहीं आ सकते, पर यह सही है कि पू० विद्यासागर जी तपश्चर्या में जितने आगे हैं, उतने ही वे कविता में भी हैं । उनका कविता-प्रेम ही उनकी 'मन: साधना' है, आत्मसाधना है। जबलपुर-प्रवास के दौरान उन्होंने 'मूकमाटी' नाम से जो सुन्दर काव्य प्रारम्भ किया है, उसे पढ़ने के बाद पाठक / आलोचक मेरे विचारों को अक्षरशः हृदय में धारण कर सकेंगे । 'मूक माटी' महाकाव्य की श्रेणी का एक असामान्य ग्रन्थ सिद्ध है । उसकी तुलना के लिए हिन्दी के संसार में शायद अन्य छन्दोमुक्त काव्य न निकले तो आश्चर्य नहीं ।

सुनो, मुनि को सभी श्रावकगण देखते / सुनते रहे हैं, मुनि-स्वभावी कवि अब देखने को मिले हैं । उनकी कविताओं का यह संकलन उनकी जबलपुर-प्रवास की स्मृतियों को जन-जन के मन में झंकृत करता रहेगा।

सुरेश सरल
'सरल कुटी'
२९३, गढ़ाफाटक, जबलपुर
(म०प्र०)

अनुक्रम

		पृष्ठ संख्या
१	*नयन-नीर*	१
२	*चरण-पीर*	२
३	*पूज्य, पूजक बना*	३
४	*पथ पूर्ण हुआ*	४
५	*चिन्ता नहीं, चिन्तन*	५
६	*प्रार्थना और .....!*	६
७	*प्यास .....*	७
८	*कम-बख्त .....!*	९
९	*मन की खटिया*	१०
१०	*खरा सो मेरा*	१२
११	*पंकिल पद*	१३
१२	*गिरगिट*	१४
१३	*पानी कौन भरे ?*	१५
१४	*आस अबुझ*	१६
१५	*नरम में न रम*	१७
१६	*मेरा वतन*	१८
१७	*क्षणिकायें .....!*	१९
१८	*चुनाव .....!*	२१
१९	*हरिता की हँसी*	२२
२०	*छुवन .....!*	२४
२१	*सत्य, भीड़ में!*	२५
२२	*तुम कण; हम मन*	२६
२३	*हुंकार अहं का*	३१
२४	*मिलन नहीं, मिला लो .....!*	३२
२५	*रंगीन व्यंग*	३३
२६	*मन की मौत*	३४

अपूर्व

सरोज चौहान

२७ प्रलय काल ३५
२८ पेट से पेटी ३६
२६ बोझिल पद ३७
३० सन्धि, अन्धी से ३८
३१ काया, माया ३६
३२ समता .....! ४०
३३ दयालु-पंजे ४१
३४ द्विमुख-पंथी ४२
३५ संन्यास .....! ४३
३६ मोम बनूँ मैं ४४
३७ कुटिया .....! ४५
३८ अनमोल की आस ४६
३६ माहोल की प्यास ४७
४० संयत आँखें ४८
४१ नाटक ५२
४२ सरगम स्वरातीत ५३
४३ बधिर बनूँ ५४
४४ चख जरा ५५
४५ अवतार .....! ५६
४६ छले छाँव में ५७
४७ कैंची नहीं, सुई बन ५८
४८ मौन मालती ६०
४६ बादल धुले ६२
५० मुक्तिका ६४
५१ तोता क्यों रोता ? ६५
५२ गीली आँखें ७७
५३ हास्य के कण ७८
५४ सातत्य ७६
५५ आभा की डूब ८०

नयन–नीर

प्रभु के प्रति किस में ?
इस में............
प्रीति का वास है
प्रतीति पास है
पर्याप्त है यह,
अब इसकी
नयन–ज्योति
चली भी जाय !
कोई चिन्ता नहीं,
किन्तु
कहीं ऐसा न हो,
............कि
प्रभु–स्तुति से पूर्व
प्रभु–नुति से पूर्व
इसके
करुण–नयनों में
नीर कम पड़ जाय ।

❑❑❑

अपूर्व

सरोज चौहान

चरण–पीर

पथ और पाथेय का
परिचय क्या दूँ ?
प्राय: परिचित हैं
नियम से जो
आदेय दिखाते,
पथ अभी
भले ही दूर हो अपरिमित ....!
परवाह नहीं
किन्तु
कहीं ऐसा न हो
कि
आस्था के गवाक्ष में से
गन्तव्य दिख जाने से
इसके
तरुण चरणों की
पीर कम पड़ जाय ।

❑❑❑

पूज्य, पूजक बना

यह सतयुग नहीं है
कलि-युग है,
भीतर ही भीतर
अहं को रस मिलता है ।
आज ! लक्ष्मी का हाथ
ऊपर उठा है
अभय बाँट रहा है
परसाद के रूप में ।
और नीचे है
जिसके चरणों में
शरण की अभिलाष ली
लजीली-सी
लचीली-सी
नतनयना
गतवयना
सती सरस्वती
प्रणिपात के रूप में ।

❑❑❑

पथ पूर्ण हुआ

वही अधिष्ठान है
सुख का
मृदु नवनीत
जिसका पुनः
मथन नहीं है,
वही विज्ञान है
..... ज्ञान .....है
निज रीत
जिसका पुनः
कथन नहीं है,
वही उत्थान है
..... थान है
प्रिय संगीत
जिसका पुनः
पतन नहीं है ।

❑❑❑

चिन्ता नहीं, चिन्तन

मानस का कूल है
समता का प्रकाश
अन्तिम विकास,
तामसता का विलास
अन्तिम ..... हास .....!
परस्पर प्रतिकूल
दो तत्व
एक बिन्दु पर स्थित हैं
दोनों शुभ्र ! बाहर से,
क्षीर–नीर–विवेक
धीर ..... गम्भीर ..... एक टेक
जीवन लक्ष्य की ओर
बढ़ रहा है इनका
एक का
तत्व–चिन्तन के साथ
और एक का
विषय–चिन्ता के साथ
एक साधु है
एक स्वादु .....।

❑❑❑

अपर

सरोज चौहान

प्रार्थना और..........!

हे ! परमात्मन् !
यह सब
आपके प्रसाद का ही
परिपाक है पावन
कि
पाँच खण्ड का प्रासाद
.....पास है
अप्सरा-सी भी प्यारी पत्नी
प्रमदा होकर भी
पति की सेवा में
अप्रमदा है प्रतिपल !
प्राण-प्यारे दो-दो पुत्र
भोग-उपभोग सम्पदा !!
सम्पन्न हूँ....सानन्द....
किन्तु
एक ही आकुलता है
कि
पड़ोसी का
दस खण्ड का महा भवन !
(मन में खटकता है रात-दिन.....!)

❑❑❑

प्यास.....

पर पर फूल रहा था
बार-बार
तन-रंजन में
व्यस्त रहा था
चिर से भूल रहा था
लोकैषणा की प्यास आस
मेरे आस-पास ही
घूमती थी,
जन-रंजन में
व्यस्त रहा था
क्या तो
इसका मूल रहा था
कारण अकारण !
मन-रंजन में

मस्त रहा था
काल प्रतिकूल रहा था
भ्रम-विभ्रम से
भटकता-भटकता
मोह प्रभंजन में
त्रस्त रहा था,
किन्तु आज
शूल भी फूल रहा है
सुगंधित महक रहा है
नीराग-निरंजन में,
चिर से पला
कंदर्प-दर्प
ध्वस्त रहा है
यह सब आपकी कृपा है
हे प्रभो !

❑❑❑

कम-बख्त.....!

कोई हरकत नहीं है
हरगिज कह सकता हूँ
यह हकीकत है
कि
हरवक्त
हर व्यक्ति का दिमाग
चलता तो है,
यदि संयत हो तो
वरदान होता है
सुख-सम्पादन में
एक तान होता है,
किन्तु
विषयों का गुलाम हो तो
..... और बे-लगाम हो तो
कमबख्त ! खतरनाक
शैतान होता है ।

❑❑❑

मन की खटिया

कृपा पालित कपालवाली
अनुभव-भावित भालवाली
ओ ! 'आदिम सत्ता'
कृपा पात्र तो बना ही दिया इसे......
चिर से
युगों-युगों से चुभते थे
जीवन के गहन मूल में
दुखद अभावों के शूल
भावों स्वभावों में
............ढले,
बदले आज वे
सुखद फूल हो गये।
जीवन-पादप
पतित-पात था
पलित-गात था
कषाय तपन के
तीव्र ताप से
आज............

सलिल का सिंचन हुआ
शीतल-शीतल
अनिल का संचरण हुआ
सुर-तरु से
हरे-भरे
आमूल-चूल हो गये,
सुरपति-पदवी
भव-भव वैभव पाने
मन की खटिया पर
वयोवृद्धा आशा
जीवित थी आज तक
दिवंगत हुई वह,
अब सब कुछ बस
जीर्ण-शीर्ण तृण सम
धूल हो गये
सब के सब
मन से बहुत दूर
भूल हो गये ।

❑❑❑

खरा सो मेरा

आम तौर से
पके आम की यही पहिचान होती है
हाथ के छुवन से
मृदुता का अनुभव
फूटती पीलिमा
तैर आती नयनों में।
फूल-समान नासा फूलती है
सुगन्ध-सेवन से ।
फिर !
रसना चाहती है रस चखना
मुख में पानी छूटता है
तब वह क्षुधित का
प्रिय भोजन बनता है
यही धर्मात्मा की प्रथम पहिचान है,
मेरा सो खरा नहीं
खरा सो मेरा
वाणी में मृदुता
तन-मन में ऋजुता
नम्रता की मूर्ति
तभी तो
भव से प्राणी छूटता है,
मुक्ति उसे वरना चाहती है
और वह उसका
प्रेम-भाजन बनता है।

❑❑❑

पंकिल पद

धर्म-कर्म से विमुख होकर
पाप कर्म में प्रमुख होकर
अनुचित रूप से
धनार्जन कर
मान का भूखा बन
दान करने की अपेक्षा
समुचित रूप से
आवश्यक धन का अर्जन कर,
बिना दान भी
जीवन चलाना
पुण्य की निशानी है ।
कीचड़ में पद रख कर
लथपथ हो
निर्मल जल से
स्नान करने की अपेक्षा
कीचड़ की उपेक्षा कर
दूर रहना ही
बुद्धिमानी है ।

❑❑❑

गिरगिट

जिस वक्ता में
धन-कंचन की आस
और
पाद-पूजन की प्यास
जीवित है,
वह
जनता का जमघट देख
अवसरवादी बनता है
आगम के भाल पर
घूँघट लाता है
कथन का ढंग
बदल देता है,
जैसे
झट से
अपना रंग
बदल लेता है
गिरगिट।

❑❑❑

पानी कौन भरे ?

इष्ट-अनिष्ट के
योगायोग में
श्रमण का मन
अनुकूलता का
हर्ष का
प्रतिकूलता का
विषाद का
यदि अनुभव नहीं करता
तब यह नियोग है
कि
उसी के यहाँ
प्रतिदिन पानी भरता है
और प्राँगण में
झाडू लगाता है 'योग'
और
विराग की वेदी पर
आसीन होता है
शुचि-उपयोग
भोक्ता पुरुष ....!

❑❑❑

आस अबुझ

एक हाथ में दीया है
एक हाथ की ओट दिया
हवा से बुझ न पाये,
अपना श्वास भी
बाधक बना है आज,
टिम टिमाता जीवित है
जीवन-खेल
स्वल्प बचा है
दीया में तेल
तेल से बाती का सम्बन्ध भी
लगभग टूट चुका है,
जलती-जलती
बाती के मुख पर
जम चुका है
कालुष कालिख मैल,
श्वास क्षीण है
दास दीन है
किन्तु आस अबुझ !
नित-नवीन
प्रभु-दर्शन की
कब हो मेल
कब हो मेल ..... ?

❑❑❑

नरम में न रम

अरे ! मन
तू रमना चाहता है
श्रमण में रम
चरम चमन में रम
सदा सदा के लिए
परमनमन में रम
चरम में चरम सुख कहाँ ?
इसलिए अब
स्वप्न में भी भूलकर
नरम नरम में
न .....रम ! न ..... रम ! !

❑❑❑

मेरा वतन

यह जो तन है
मेरा वतन नहीं है
तन का पतन
मेरा पतन नहीं है
प्रकृति का आयतन है,
जन-मन-हारक नर्तन
परिवर्तन .....वर्तन
अचेतन है
फिर, इसका क्यों हो
गीत.....गान.....कीर्तन ?
इतना तनातन
स्थायी बनाने का
और यतन
सब का स्वभाव-शील है
कभी उत्थान, कभी पतन
मैं प्रकृति से ..... चेतन हूँ
प्रकाश-पुंज रतन हूँ
सनातन हो नित-नूतन
ज्ञान-गुण का केतन मेरा वतन है
वेदन-सावेदन अनन्त वेतन है
इसीलिए मैं
बे-तन हूँ।

❑❑❑

क्षणिकायें......!

हम तट पर ठहरे
आ रही हैं हमारे
स्वागत के लिए
..... साथ लिए
हास्य-मुखी मालायें
लहरों पर लहरें
गरदन झुकी हमारी
झुकी ही रह गई
मन की आस मन में
रुकी ही रह गई
पता नहीं चला
कहाँ वह गई
पल भर में,
निडर होकर हम भी
खतरे से खतरे
गहरे से गहरे
पानी में
उतरे ..... उतरते ही गये
और हमने पायी
चारों ओर जलीय सत्ता ..... !
धीमी-धीमी श्वास भरती
हमें ताक रही चाव से

अपूर्ण

सुरेश चौहान

वह हमें रुचती नहीं
और हम
खाली हाथ लौटते-लौटते
यकायक सुनते हैं
कुछ सूक्तियाँ,
कि
प्रकृति को मत पकड़ो
पर ! परखो उसे
वे क्षणिकायें हैं
पकड़ में नहीं आतीं
भ्रम-विभ्रम की जनिकायें हैं,
तुम पुरुष हो, पुरुषार्थ करो
कभी न होना
किसी से प्रभावित
भावित सत् से होना 'जो है'
इसी विधि से कई पुरुष विगत में
उस पार उतरे हैं
और निराशता के बदले आज
गहन गंभीरता से
भर....भर....भरे जा रहे
हमारे ये चेहरे।

❑❑❑

चुनाव.....!

डूबता हुआ विश्व
पा जाये
कूल-किनारा
और एक
तरण-तारण
नाव मिली प्रभु से
उस पर कौन-कौन आरूढ़ हुआ ?
प्रभु जानते हैं
और अपना-अपना मन !
पता नहीं
आज वह नाव
जीवित है क्या ? नहीं
किन्तु नाव की रक्षा हो
एतदर्थ
एक परियोजना हुई
और वह जीवित है
चुनाव .....!

❑❑❑

अपूर्ण

सुरेश चौहान

अपट

हरिता की हँसी

गन्ध की प्यास थी जिसे
तरंग क्रम से आई
हवा में तैरती, सुरभि सूँघती
फूली नासा से पूछती हैं
चंचल-आँखें,
कौन-सी संवेदना में डूबी है ?
जिसका दर्शन तक
नहीं हो रहा है
यहाँ भी है स्वाद की भूख
नासा फुस-फुसाती है
कहाँ भाग्यवती हो तुम !
मकरन्द का स्वाद ले सको
प्राप्य को नहीं, अप्राप्य को
निकट से नहीं, दूर से
निहारती हो तुम ! सीमित !
दिखाती हूँ, चलो तुम साथ
और फूला फूल
तामसता की राग-राजसता की

रक्ताभ ले व्यंगात्मक
इतरों का उपहास करता
हँसता दर्शित हुआ,
पर ! आँखें
घबराती-सी कहती हैं
सब कुछ रुचता है
सब में मृदुता है
पर !
रक्ताभ राजसता
चुभती है हमें
और कलियों का
जो हरीतिमा से भरी
चुम्बन लेती
प्रभु से प्रार्थना करती है
हे ! हर्ष-विषाद-मुक्त
हरि-हर !
हर हालत में
हर सत्ता से
हरीतिमा-हरिताभ
फूटती रहे
हँसती रहे
धन्य......!

❑❑❑

छुवन.....!

प्रकृति-प्रमदा
प्रेम वश
पुरुष से लिपटी
हरिताभ हँस पड़ी
प्रणय-कली
महकी गन्ध भरी
खुल-खिल पड़ी
रक्ताभ लस रही
किन्तु !
पुरुष सचेत है
वह डूबा नहीं
प्रकृति जिसमें डूबी है
पुरुष की आँखों में
हीराभ-मिश्रित
नीलाभ बस रही ।

❑❑❑

सत्य, भीड़ में !

कहाँ क्या ? था विगत में
..... ज्ञात नहीं
अनागत का गात भी
..... अज्ञात ही
आगत की बात है
अनुकरण की नहीं
जहाँ तक सत्य की बात है
देश-विदेश में ..... भारत में भी
सत्य का स्वागत है
आबाल-वृद्धों, प्रबुद्धों से
किन्तु
खेद इतना ही है
कि
सत्य का यह स्वागत
बहुमत पर
आधारित है।

❑❑❑

तुम कण; हम मन

मन का इंजन है
तन धावमान है
इंगित पथ पर,
पर ! उलझन में मन है
कभी करता है 'था' में गमन !
कभी सम्भावित में
भ्रमण-चंक्रमण
कब करता है? भावित रमण !
कभी विमन रहता
कभी सुमन
श्रमण का भी मन
और कुछ भूला सा
विगत में लौटा है
दयार्द्र कण्ठ है
कुछ कहना चाहता है
कण्ठ कुण्ठित है
लौट आ आशु गति से
तन से कहता मन
तुम साथ चलो

हम तीनों अपराधी हैं
तन-वचन और मन
और तीनों आ
सविनय कहते हैं
पद-दलित-कंकरों को
तुम लघुतम कण हो
निरपराध हो,
हम गुरुतम मन हो
सापराध हैं
तुम पर पद रख कर
हिंसक हो, अहिंसक से
पथ चलते गये,
पर !
प्रतिकूल गये
भूल के लिए
क्षमा-याचना तक
भूल गये,
लौट आये हैं
अपराध क्षम्य हो
अब कंकर बोलते हैं
अपने मुख खोलते हैं
अपने आचरण पर
फूट फूट रोते हैं
नहीं .....नहीं .....कभी नहीं

इस विनय को हम स्वीकारते नहीं
अन्यथा धरती माँ
धारण नहीं करेगी हमें
नीचे खिसकेगी
सब सीमा-मर्यादायें
..... ठस होंगी .....
तारण-तरणों की
चरण-शीलों की
चरण-रज
सर पर लेनी थी,
हाय ! किन्तु
कठिन-कठोर हैं
अधम घोर हैं
हम सब
तीन पहलूदार तीखे
त्रिशूल ...... शूल हैं
हम स्थावर हैं
परम पामर हैं
निर्दय-हृदय शून्य,
तुम चर हो जंगम
चराचर बन्धु !
सदय हो अभय-निधान
सत्पथ पर यात्रित हो

पदयात्री हो
कर-पात्री हो,
लाल-लाल हैं
कमल-चाल है
युगम पाद तल
तुम सब के,
छिल गये हैं
जल गये हैं
लहूलुहान हो
और ललाई में
ढल गये हैं
जिनमें
गोल-गोल आँवले से
फफोले फोले
पल गये हैं
यह कठोरता की
कृपा है हमारी
अपवर्ग पथ पर चलते तुम
उपसर्ग हुआ
हमसे तुम पर
उपकार दूर रहा
अपकार भरपूर रहा
तुम्हारे प्रति हमारा,

अपराध क्षम्य हो
तुम लौट आये
कृपा हुई हम पर
हम अपद हैं
स्वपद हीन
कैसे आते चलकर तुम तक,
स्वीकार करो अब
शत-शत प्रणाम
और आशीष दो
हम भी तुम सम
शिव-पथ पथिक
गुणों में अधिक
..... बन सकें
और .....
साधना की ऊँचाइयाँ
शीघ्रातिशीघ्र चढ़ सकें
ध्रुव की ओर ..... बढ़ सकें
बन सकें हम
अन्ततोगत्वा
तुम सम श्रमण
और चमन !

❑❑❑

हुंकार अहं का

कृति रहे
संस्कृति रहे
चिरकाल तक
मात्र ! जीवित !
सहज प्रकृति का
शृंगार श्रीकार
मनहर आकार ले
जिसमें आकृत होता है,
कर्ता न रहे
विश्व के सम्मुख
विषम विकृति का
अपार संसार
अहंकार का हुंकार ले
जिसमें जागृत होता है
और हित .....
..... निराकृत होता है ।

❑❑❑

मिलन नहीं; मिला लो !

काया के मिलन से
माया के छलन से
ऊब गया है यह
भटकता–भटकता
विपरीत दिशा में
खूब गया है यह
सहचर हैं बहुत सारे
पर ! कैसे लूँ ?
सहयोग उनसे
अंधों से कंधों का सहारा
मिल सकता है
किन्तु
पथ का दर्शन–प्रदर्शन संभव नहीं है
यह भी अंधा है
इसे आँख मत दो..... भले ही
मत दो प्रकाश
किन्तु
हस्तावलम्बन तो दो !
इसे ऊपर उठा लो गर्त से
और मिलन नहीं
अपने आलोक में मिला लो
हे सब द्वन्द्वों से अतीत !
अजित ! अभीत !

❑❑❑

रंगीन व्यंग

बालक और पालक
दो दर्शक हैं
हरित–भरित
मनहर परिसर है
सरवर तट है
श्वास–श्वास पर
तरंग का
प्रवास चल रहा है
अंतरंग गा रहा है
तरंग–रंग
भा रहा है
तभी तो
बालक का प्रतिपल
प्रयास चल रहा है
बहिरंग जा रहा है
तरंग पकड़ने,
और निस्संग तट में
फेन का बहाना है
हास चल रहा है
या उपहास चल रहा है ?
बालक पर क्या ? पालक पर
पता नहीं किस पर ?

❑❑❑

अपूर्व
सरोज चौहान

मन की मौत

स्मृति का विकास
विज्ञता का
स्मृति का विनाश
अज्ञता का
प्रतीक है,
यह मान्यता
लौकिक है
अलौकिक नहीं
इसीलिए यह
अलीक है
किन्तु
स्मरण का मरण ही
यथार्थ ज्ञान है ।

❑❑❑

प्रलय–काल .....!

अन्याय की उपासना कर
वासना का दास बनकर
धनिक बनने की अपेक्षा
न्याय–मार्ग का उपासक बन
धनिक नहीं बनना भी
श्रेष्ठतम है,
किन्तु
अकर्मण्यता
मानव मात्र को
अभिशाप है
महा पाप है
कारण !
अन्याय से जीवन बदनाम होता है
न्याय से नाम होता है
जीवन कृतकाम होता है
जबकि
अकर्मण्य की छाँव में
जीवन तमाम होता है ।

❑❑❑

पेट से पेटी

अन्न पान से
पेट की भूख
जब शान्त होती है
तब जागती है
रसना की भूख,
रस का मूल्यांकन !
नासा सुवास माँगती है
ललित-लावण्य की ओर
आँखें भागतीं हैं,
श्रवणा उतारती
स्वरों की आरती है
मन मस्ताना होता है
सब का कपताना होता है
आविष्कार कपाट का होता है
अन्यथा
फण-कुचली घायल नागिन--सी
बिल से बाहर
निकलती नहीं हैं
ये इन्द्रिय-नागिन !

❑❑❑

बोझिल पद

कभी-कभी
आशा निराशता में
घुल जाती है
हे प्राणनाथ !
अन्तिम ऊँचाई है वह
लोक शिखर पर बसे हो,
अन्तिम सिंचाई है वह
अनुपम द्युति से लसे हो
यह भी सत्य है, कि
अन्तिम सिंचाई है वह
कमल फूल से हँसे हो
किन्तु तुम्हें
निहार नहीं सकता
ऊपर उठाकर माथा
दूरी बहुत है
तुम तक विहार नहीं हो सकता
पद यात्री है यह
इसलिए
इसकी दृष्टि से
ओझल हो गये हो,
कारण विदित ही है
इसके माथे पर
चिर-संचित पाप का भार है
फलस्वरूप
इसके पद बोझिल हो गये हैं
और तुम
ओझल हो गये हो ।

❑❑❑

सन्धि, अन्धी से

इस बात को स्वीकारना होगा
कि
आँख के पास
श्रद्धा नहीं होती है
क्योंकि
जब कुछ नहीं दिखता एकान्त में
आँखें भय से कंपती हैं,
और !
श्रद्धा !!
अन्धी होती है,
किन्तु
श्रद्धा के पास
उदारतर उर होता है
जिसमें मधुरिम-
सुगन्धि होती है
प्रभु का नाम जपती है,
तभी तो
सहज रूप से
अज्ञेय किन्तु
श्रद्धेय प्रभु से
सन्धि होती है
श्रद्धा ! अन्धी होती है ।

❑❑❑

काया, माया

वह गृहस्थ
जिसके पास,
कौड़ी भी नहीं है
कौड़ी का नहीं है,
वह श्रमण
जिसके पास
कौड़ी भी है
कौड़ी का नहीं है,
एक की शोभा
माया है
राग-रंग
और एक की
मात्र काया
त्याग-संग ।

❑❑❑

समता.....!

भुक्ति की ही नहीं
मुक्ति की भी
चाह नहीं है
इस घट में,
वाहवाह की
परवाह नहीं है
प्रशंसा के क्षण में
दाह के प्रवाह में अवगाह करूँ
पर ! आह की तरंग भी
कभी न उठे
इस घट में ..... संकट में
इसके अंग-अंग में
रग-रग में
विश्व का तामस आ
भर जाय
किन्तु विलोम-भाव से,
यानी !
ता ....म....स...., स....म....ता !

❑❑❑

दयालु पंजे.....!

खर नखरदार
जिसके पंजे हैं
कभी चूहों का
शिकार खेलती है,
कभी प्राण प्यारे
संतान झेलती है
जिन पंजों में
प्यार पलता है
उन्हीं पंजों में
काल छलता है
ऐसा लगता है
किन्तु पंजे आप
हिंसक हैं, न अहिंसक
प्राण का पलना
काल का छलना
यह अन्तर घटना है
बाहर अभिव्यक्ति है
तरंग पंक्ति है
घटना का घटक
अन्दर बैठा है
अव्यक्त-व्यक्ति है वह,
उसी पर आधारित है यह
वही विश्व को बनाता भुक्ति
वही दिलाता विश्व को मुक्ति
हे ! भोक्ता पुरुष !
स्वयं का भोग कब करेगा ?
निश्छल योग कब धरेगा ?

❑❑❑

द्विमुख पंथी ....!

सम्यक् साधन हो
सत् शक्ति हो
समाराधन हो
सद् भक्ति हो
अमूर्त भी साध्य
मूर्त हो उठता है
अमूर्त आराध्य
स्फूर्त हो उठता है,
यह सदुक्ति चरितार्थ होती तब,
'एक पंथ दो काज'
असम्भव कुछ नहीं
बस ! सब कुछ सम्भव है
भुक्ति और मुक्ति
युगपत् ताकती है उसे
सत्पथ का पथिक बना है
किन्तु
द्विमुख-पंथी 'सो'
पथ पर चल नहीं सकता
अनन्त का फल चख नहीं सकता।

❑❑❑

संन्यास....!

बहुतों के मुख से यही सुनता आया था
विश्वस्त हो यही गुनता आया था
कि
सबसे नाता तोड़ना
वन की ओर मुख मोड़ना
संन्यास है,
किन्तु आज
गुरु कृपा हुई है
ठीक पूर्व से विपरीत
विश्वास हुआ है
संन्यास का अहसास हुआ है,
कि
बिना भेद-भाव से
बिना खेद-भाव से
बस मात्र
एक वेद-भाव से
एक साथ
सब के साथ
साम्य का नाता जोड़ना
और 'मैं' को
विश्व की ओर मोड़ना ही
सही संन्यास है।

❑❑❑

मोम बनूँ मैं........

वरद हस्त जो रहा है
इस मस्तक पर
हे गुरुवर !
कठिन से कठिनतर
पाषाण-हृदय भी
मृदल मोम हो गए,
दु:ख की आग बरसाते
प्रचण्ड प्रभाकर भी
शरद सोम हो गए,
विरोध की ज्वाला से जलते
विलोम वातावरण भी
अनुलोम हो गए
चेतना की समग्र सत्ता
भय से संकोचित, मूर्च्छित थी आज तक
अब वह अभय-जागृत
पुलकित रोम-रोम हो गए,
प्रति-धाम से
प्रति-नाम से
मधुर-ध्वनि की तरंग आ रही है
श्रवणों तक
बस ! वह सब
सुखद ओम् हो गए ।

❑❑❑

कुटिया....!

ओ री ! कलि की सृष्टि
कलि से कलुषित
कलंकिनी दृष्टि !
सदा शंकिनी !
अवगुण-अंकिनी !
कभी-कभी तो
गुण का चयन किया कर !
तेरी वंकिम दृष्टि में
केवल अवगुण ही झलकते हैं क्या ?
यहाँ गुण भी बिखरे हैं
तरतमता हो भले ही
ऐसा कोई जीवन नहीं है
कि
जिसमें
एक भी गुण नहीं मिलता हो
नगर-उपनगर में
पुर-गोपुर में
अभ्रंलिह प्रासाद हो
या कुटिया
जिसके पास
कम से कम एक तो
प्रवेश द्वार
होता अवश्य !

❑❑❑

अनमोल की आस

याचना का चोला पहना
यातना का पहना गहना
आँगन-आँगन
कितने प्राँगण ?
घूमा है यह
सुख-सा कुछ
मिलता आया
और मिटता आया
सुख की आस अमिट !
आज तक !
अमित मिला नहीं
अमिट मिला नहीं
हे ! अनन्त सन्त
अब मोल नहीं
अनमोल मिले !

❑❑❑

माहोल की प्यास

ओ ! श्रवणा
कितनी बार
श्रवण किया,
ओ ! मनोरमा
कितनी बार
स्मरण किया
कब से चल रहा है
संगीत-गीत यह
कितना काल व्यतीत हुआ
भीतरी भाग भीगे नहीं
दोनों अंग बहरे
कहाँ हुए
हरे भरे !
हे ! नीराग हरे !
अब बोल नहीं
माहोल मिले ।

❑❑❑

संयत आँखें

डाल-डाल के
गाल-गाल पर
लाल-लाल हैं
फूल गुलाब !
फूल रहे हैं
लज्जा की घूँघट
खोल-खोल कर
अधर में डोल रहे
मार्दव अधरों पर
कल-कमनीयता
भीतरी संवेदन
रहस्मय बोल
बोल रहे हैं
अनमोल रहे
या मोल रहे,
यह एक प्रश्न है
दर्शकों के सम्मुख
और उस ओर
पराग प्यासा
सुगन्धभोजी

भ्रमर दल ने
अपलक
एक झलक
दृष्टिपात किया
बस ! धन्य !
इतने से ही
आँखों का पेट भर गया
तृप्ति का अनुभव,
अपने में
रूप-रंग समेट कर
पलक बन्द हुए
और रसना
गुनगुनाती
प्रारम्भ हुआ
गुण-गान-कीर्तन
हाव-भाव
टुन..... टुन..... नर्तन,
किन्तु नासा की भूख
दुगुनी हुई
गंध से मिलने
बातचीत करने
लालायित है

उतावली करती-करती
गम्भीर होती जा रही है
जैसे कहीं
विषयी उपस्थित होकर भी
विषय अनुपस्थित हो,
अब नासा
अपनी अस्मिता पर
शंकित होती
कि
इस समय
मैं हूँ क्या नहीं ?
यदि हूँ तो,
गंध का स्वाद
क्यों नहीं आता,
जब कि गंधवान्
उपस्थित है सम्मुख
इसी बीच स्पर्शा भी
इस विषय में
सक्रिय होती
अपनी तृषा बुझाने,
जब वह छुवन हुआ
स्पर्शा ने घोषणा कर दी

कि
यहाँ प्रकृति नहीं है
मात्र प्रकृति का अभिनय है
या प्रकृति का अविनय है
माया छल
ये फूल तो हैं
पर ! कागद के हैं
तब तक
नासा की आसा
निराशता में लज्जावश
डूबती चली
फलस्वरूप
भ्रम विभ्रम से
भ्रमित हुआ
भ्रमर-दल
उड़ चला वहाँ से,
गुनगुनाता, कहता जाता
कि
सत्य की कसौटी
नेत्र पर नहीं
संयम-नियंत्रित
ज्ञान-नेत्र पर
आधारित है।

❑❑❑

अपूर्व
सरोज चौहान